



विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१

पोस्टल रजि. नं. NSK - 64

वर्ष ८ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२२ • भाद्रपद पूर्णिमा [शक] • दि. १६-९-१९७८ • अंक ३

उद्बोधन

मेरे प्यारे साधक/साधिकाओ !

धर्म प्रज्ञा जाग्रत रहे ।

धर्मप्रज्ञा जाग्रत रहेगी तो मोह-मूढ़ता दूर हटती जायेगी। मोह-मूढ़ता दूर हटेगी तो राग से मुक्ति मिलेगी ! राग से मुक्ति मिलेगी तो द्वेष से मुक्ति मिलेगी। राग और द्वेष से मुक्ति मिलते ही उनसे उत्पन्न होने वाले अन्य सभी मनोविकारों से मुक्ति मिल ही गई। मनो-विकारों से मुक्ति मिली तो दुःख से मुक्ति मिली, बन्धनों मुक्ति मिली।

राग-द्वेष तो जहाँ कहीं भी हों, दुःख के विधायक ही हैं। बन्धन बांधने वाले ही हैं। और तो और विपश्यना-साधना के क्षेत्र में भी राग-द्वेष जागे तो पांव में बेड़ियां पड़ जाय, प्रगति के पथ पर दीवारें खड़ी हो जाय। विपश्यना-साधना का काम तो राग और द्वेष को समाप्त कर देना है। राग-द्वेष जागते रहें तो विपश्यना-साधना कहां हुई ?

विपश्यना-साधना के क्षेत्र में राग-द्वेष कैसे जागते हैं ? विपश्यना-साधना के गहरे अभ्यास के लिए शरीरके अणु-अणु में उत्पत्ति और लय की संवेदना जागनी आवश्यक है। परन्तु ऐसी संवेदना न जाग रही हो अथवा अधूरी जग रही तो ऐसी मनचाही संवेदना प्राप्त करने के लिए मन छटपटाने लगे और जब कभी ऐसी संवेदना प्राप्त हो जाय तो उसे ही सब कुछ मानकर खुशी से नाचने लगे तो यही राग-रंजन है, यही द्वेष-दूषण है। इस प्रकार राग-रंजित और द्वेष-दूषित हुआ साधक साधना में आगे बढ़ नहीं सकता।

निर्लिप्त रहकर जो जैसा है उसे वैसा ही देखते रहने का नाम ही तो विपश्यना-साधना है। राग रंजित हो गए या द्वेष-दूषित हो गए तो निर्लिप्त कहां रही ?

निर्लिप्त हो जाने का मतलब निष्क्रिय हो जाना नहीं है। काम तो करते ही रहना होगा। अभ्यास तो चालू रखना ही होगा। निरंतर अभ्यास द्वारा ही समाधि पुष्ट होगी, चित्त एकाग्र होगा, कुशाय होगा। तीव्र संवेदनशील होगा और तब अपने आप अधिद्या का मोटा पर्दा फटेगा, सारे शरीर में सूक्ष्म से सूक्ष्म संवेदना अनुभूत होने ही लगेगी। अतः आवश्यक है कि अभ्यास की निरंतरता बनाए रखें। लोभ-लालसा (कामना) से बचते हुए, द्वेष-दौर्मनस्य से बचते हुए, आलस्य-प्रमाद से बचते हुए, शंका-संदेह से बचते हुए उल्लाह-पूर्वक अभ्यास करते ही रहें।

धम्म वाणी

कामतो जायते सोको कामतो जायते भयं ।

कामतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ॥

धम्मपद २१५

कामना से शोक उत्पन्न होता है, कामना से ही भय उत्पन्न होता है। कामना से जो मुक्त हो गया, उसको शोक नहीं, फिर भय कहां से हो !

साधको ! हमारा कल्याण इसी में है कि मोह से बचें, राग से बचें, द्वेष से बचें। मोह, राग, द्वेष से बचे रहकर अन्य मनोविकारों से बचें। निर्विकार कर्म में ही दुःखद बंधनों से छुटकारा है।

कल्याण मित्र

स. ना. गो.



सुख कामनापूर्ति में नहीं, कामनाके त्यागमें है ।

(लेखक : श्री कन्हैयालाल लोढा)

संसार के सभी प्राणी सुख चाहते हैं। उनका प्रत्येक प्रयत्न सुख के लिए होता है। मानव भी प्राणी है और वह बचपनसे ही सुख-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है। वह सोचता है कि मेरी अमुक-अमुक कामनाएं पूरी हो जायेंगी तो मैं सुखी हो जाऊंगा। यथा एक गरीब व्यक्ति सोचता है कि मैं लखपति हो जाऊं तो सुखी हो जाऊंगा और वह प्रयत्न करके लखपति बन भी जाता है, परन्तु देखा जाता है कि लखपति हो जाने पर भी वह सुखी नहीं हो पाता। इसी प्रकार लखपति सोचता है कि मैं करोड़पति हो जाऊं तो सुखी हो जाऊंगा; परन्तु वह भी करोड़पति हो जाने पर भी सुखी नहीं होता। इसी प्रकार कार, बंगला आदि की कामना-पूर्ति को भी ले सकते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति अपने ही बचपन के जीवन पर दृष्टि डाले तो दीखेगा कि उस समय सुखी होने के लिये जो कामनाएं की थीं, उनमें से अधिकांश पूर्ण हो चुकी हैं, परन्तु उन कामना पूर्तियों से सुखमें कोई वृद्धि हुई हो, ऐसा नहीं। उससे पूछा जाय कि, “तुम बचपन में या आजसे दस वर्ष पूर्व अधिक सुखी थे या आज ?” तो उत्तर मिलेगा कि मैं बचपन में या आजसे दस वर्ष पूर्व ही अधिक सुखी था।

आश्चर्य यह कि प्रत्येक व्यक्ति की अनेक कामनाओं की पूर्ति होती है। एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं, जिसकी कोई भी कामना पूरी

नहीं हुई हो; परन्तु उस कामना-पूर्ति से उसके सुखमें वृद्धि हुई हो, ऐसा नहीं देखा जाता। इससे यह परिणाम निकलता है कि 'सुख कामना-पूर्ति में है' यह मान्यता मिथ्या है। सच्चाई यह है कि सुख कामना-पूर्ति में नहीं, प्रत्युत कामना के परित्याग में है।

विश्लेषण — कामना के उत्पन्न होते ही चित्त प्रायः अशान्त हो जाता है, चित्त की अशांति दुःख ही है। यह अशांति तब तक रहती है, जब तक कामना-पूर्ति नहीं होती। जब कामना पूर्ण हो जाती है, तब उस व्यक्तिको सुखानुभूति होती है और वह समझता है कि उसका वह सुख कामना-पूर्ति होने से ही मिला है; परन्तु उसकी यह समझ भ्रांति है, कारण कि कामना-पूर्ति-हेतु प्राप्त वस्तु अब भी उसी प्रकार उससे अलग है, जैसे पहले थी। अब केवल उस व्यक्ति में उस कामनाकी पूर्ति न होनेका दुःख नहीं रहा। अर्थात् कामना न रही, अतः सुख कामना न रहने से मिला। परन्तु कामनाकी पूर्ति और कामनाका अभाव युगपत् (एक साथ) होता है। इसलिए यह भ्रम हो जाता है कि सुख कामना-पूर्तिसे मिला। यदि सुख कामना-पूर्ति के रूप में प्राप्त वस्तुसे मिलता तो वह सुख उस वस्तुके रहते बराबर मिलना चाहिए था; परन्तु यह सर्वविदित है कि कामना-पूर्तिजनित सुख प्रतिक्षण क्षीण होता है और एक स्थिति ऐसी आती है कि उस वस्तुसे जनित सुख सूख जाता है तथा जीवन में नीरसता आ जाती है। नीरसतासे मानव ऊबता है और सुख-प्राप्ति के लिए फिर नयी कामना पैदा करता है। इस नयी कामनाका भी यही परिणाम होता है, जो पूर्व कामना का हुआ था, अर्थात् यह नयी कामना पूरी होती है और उससे प्राप्त सुख सूखकर नीरसता आ जाती है। फिर नीरसता नयी कामनाको जन्म देती है। इस प्रकार कामना-उत्पत्ति-पूर्तिका चक्र चलता रहता है। यह चक्र अनादिकालसे चल रहा है। इस चक्रका कारण है— कामना पूर्तिसे प्राप्त वस्तुमें सुख मानना।

उपयुक्त तथ्यको हम एक उदाहरणसे समझें—

'क' एक अध्यापक है। वह बड़ी शांतिसे बैठा है। इसी समय उसका सहपाठी पुराना मित्र 'ख' कारमें बैठकर आता है और बातचीतके सिलसिलेमें बतलाता है कि वह किस प्रकार व्यवसायसे करोड़पति बन गया है। यह सुनकर 'क' के मन में विचार आता है कि मुझसे कम योग्यतावाला यह व्यक्ति सेठ बन गया है, कारमें ठाटसे घूमता है। मैं कैसा अभाग्य हूँ कि इससे अधिक योग्यतावाला होता हुआ भी दरिद्र हूँ, आने-जानेके लिए मेरे पास कारकी तो बात दूर रही, स्कूटर तक नहीं है। उसके मन में विचार आता है कि मुझमें मेरे मित्र 'ख' से अधिक योग्यता है। मैं भी धन कमाऊँगा, कार लाऊँगा। फिर तो उसमें कार-प्राप्तिकी कामना उत्पन्न होते ही उसका मन अशांत हो गया। चित्त विशुब्ध हो गया। अब उसे कारका अभाव खटकने लगा। जो 'क' कारकी कामना उत्पन्न होनेसे पहले शांत तथा सुखी बैठा था अब वह कारकी कामना से दुःखी हो गया। फिर उसने अथक परिश्रम किया। अनेक कष्ट सहन किये और धन कमाया। उसने कार प्राप्तिके लिए इडे लगाया। छः मास पश्चात् उसको कार आनेका नख्खर आया। कम्पनीने सूचना दी कि आप चार-पांच दिनोंमें पैसे जमा कराकर कार ले जाय। इस सूचना से उसका हृदय प्रफुल्लित हुआ, उसे सुख हुआ। विचारणीय बात यह है कि 'क' ने अभी तक प्राप्त होनेवाली कार देखी तक नहीं है और न

किसी कारपर उसका स्वामित्व हुआ है, अभी तो कार कम्पनी के गैरेज में जहाँ-कहीं-तहाँ पड़ी है, फिर भी उसे सुख हो गया। यदि कार प्राप्ति में सुख होता तो कारकी प्राप्ति होनेपर ही सुख होना चाहिए था, पहले नहीं। बिना कारकी प्राप्तिमें सुख होना यह बतलाता है कि सुख कारकी प्राप्ति में नहीं है, प्रत्युत उसकी स्वयंकी कल्पना में अर्थात्— 'कारकी कामनाके अभाव' में है।

चार दिन बाद पैसे जमा करके वह कार ले आया तो ड्रायव्हरसे कहा कि शहरमें धीरे-धीरे कार चलाना। कारमें बैठकर कपड़ेके मित्रकी दुकानके सामने पहुँचते ही कार रुकवायी और कपड़े खरीदनेके बहाने अंदर गया। मित्रने कार देखकर प्रशंसा की तो 'क' फूलकर कुप्पा हो गया। इसी प्रकार अपने अन्य मित्रोंके यहाँ भी किसी-न-किसी बहाने पहुँचा और उनके मुखसे प्रशंसा सुनकर फूला न समाया। उसके हर्ष या गर्वका पारावार न रहा।

परन्तु दूसरे दिन फिर कारमे बैठकर बाजार में गया तो कल-जितना सुख आज न रहा। यहाँतक कि दस-पन्द्रह दिनोंमें तो वह सुख घटकर उसकी सामान्य स्थितिमें आ गया। केवल उतना ही सुख रह गया जितना कभी साइकिलके आनेपर हुआ था।

विचारना यह है कि कार वही है और कारका स्वामी भी वही है, फिर सुख सामान्य कैसे हो गया? क्यों अब उसके हृदयमें गुदगुदी नहीं होती? इससे यह परिणाम निकलता है कि सुख कारकी प्राप्तिमें भी नहीं है। यदि कारकी प्राप्तिमें होता तो वह अब भी होता।

'क' अपने कार्यालयमें बैठा है और कार किसी मेहमानको लेने स्टेशन गयी है और वहाँ कारमें किसी प्रकार आग लग जाती है और कार जल जाती है। कार न रही, परन्तु 'क' को अब तक कोई सूचना नहीं मिली, अतः उसे कोई दुःख नहीं हुआ। यदि कारके न होनेसे 'क' को दुःख होता तो कारके जलते ही होना चाहिए था। इससे यह परिणाम निकलता है कि कारके न होनेसे 'क' के दुःखका कोई सम्बन्ध नहीं है।

अतः यह परिणाम निकलता है कि कामनाकी पूर्तिसे प्राप्त सम्बन्धित वस्तु या पदार्थ के साथ सुखका कोई संबंध नहीं है। सुखका संबंध मनमें रहे हुए राग-द्वेषमयी मान्यतासे है और कामनापूर्तिसे होनेवाला सुख कामनाके न रहनेसे; कामनाके अभावसे हुआ है। उसकी उस समय वही स्थिति होगयी, जो कामना उत्पत्ति से पूर्व थी अर्थात् कामनाका अभाव हो गया। कामनाका अभाव होनेसे चित्त शांत हो गया। चित्तकी शांतिसे सुख मिला।

तात्पर्य यह है कि सुख कामनापूर्तिमें नहीं है — कामनाके परित्याग या अभावमें है।

कामना-दुःखका मूल है। कामनापूर्तिमें सुख तो है ही नहीं, साथ ही कामनापूर्ति तथा इंद्रियजन्य सुख ही संसारके समस्त दुःखों और बुराइयोंको उत्पन्न करनेवाला भी है। यथा—

१) सुख-क्षीणता, २) शक्ति-क्षीणता, ३) अभाव, ४) जड़ता (मूर्च्छा), ५) आकुलता, ६) पराधीनता, ७) नख्खरता, ८) नीरसता ९) अतृप्ति, १०) वियोग का दुःख आदि उत्पन्न करता है।

सुख-क्षीणता—इंद्रिय-सुख प्रतिक्षण क्षीण होता है। ऊपर के उदाहरण में ही कारके मिलनेवा जो सुख तत्काल मिला, वह सुख एक घंटे पीछे न रहा। दूसरे दिन पहले दिन-जितना न रहा और

अन्तमें वह कार उसके नित्य-प्रतिके उपयोगकी सामान्य वस्तुमात्र रह गयी और कारसे मिलनेवाला सुख सूख गया। इस प्रकार कारका सुख क्षण-प्रतिक्षण घटता ही गया।

दूसरा उदाहरण लें। एक गरीब व्यक्ति तीन दिन का भूखा है, उसे किसीने निमंत्रण दिया और बादामका हलवा परोसा। उसने जिंदगी में कभी हलवा ही नहीं खाया था। अतः उसे बादामका हलवा बड़ा स्वादिष्ट लगा, बड़ा सुख हुआ। परन्तु ज्यों-ज्यों ग्रास लेता गया, त्यों-त्यों सुखमें कमी होती गयी और एक ऐसी स्थिति आ गयी कि कोई उसे हलवा परोसना चाहता है तो वह 'ना' करता है। फिर भी उसे यदि जबरदस्ती हलवा खिलाना चाहता है तो उसे बुरा लगता है, दुःख होता है।

इस प्रकार खानेवाला व्यक्ति वही है और हलवा भी वही है, फिर भी धीरे-धीरे सुख समाप्त हो गया।

यहां प्रश्न उठता है कि 'उसका पेट भर गया, इसलिए उसका सुख मिट गया है,' परंतु यह बात सर्वत्र कैसे लागू हो सकती है?

इस प्रश्नके समाधानके लिए हम श्रोत्रेन्द्रियके विषय-सुख — संगीत या राग-रागिनियों को लें। किसी गायिकाकी मधुर ध्वनिका एक रेकार्ड भरा हुआ है, उसे सुनते ही चित्त प्रफुल्लित हो गया। फिर दुबारा वही रेकार्ड सुनाया गया तो उतना सुख न हुआ, इसी प्रकार तीन बार, चार बार, पांच बार, छः बार सुनाते-सुनाते यदि पचास बार सुनाया जाय तो अपनी प्रिय गायिकाके कण्ठकी वही मधुर ध्वनि सुननेमें नीरस लगने लगेगी। यद्यपि उस ध्वनिके बार-बार सुननेसे कान भर नहीं गए हैं, उसने कान में जगह नहीं रोकी है। फिर भी वही ध्वनि और वही सुनानेवाला होनेपर भी कानमें वजन न बढ़ने तथा स्थान न घेरने पर भी सुखका समाप्त हो जाना— इस बातका द्योतक है कि इंद्रिय-सुख प्रतिक्षण क्षीण होता जाता है।

इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रियके विषयको लें— एक व्यक्ति विदेशसे हजारों रुपये किराये में व्यय करके ताजमहल देखने आया। वह ताजमहलकी पत्थरकी पच्चीकारी को देखकर दंग रह गया। अपनेको बड़ा सुखी अनुभव किया, परन्तु धीरे-धीरे ताजमहलके सौंदर्यका वह सुख धीमा पड़ गया, घटता गया। छह-सात घंटे पश्चात् ताजमहलको देखते-देखते वह ऊब जायगा और उसे वहां ठहरना या ताजमहलको देखना पसंद न आयेगा।

ताजमहल वही, देखनेवाला भी वही व्यक्ति और ताजमहल देखनेसे न उसकी आंखों में स्थान भरा, न आंखें देखने से थकीं, क्योंकि आंखें तो अभी भी दूसरी वस्तुएं देख ही रही हैं, फिर भी उसका देखने का सुख समाप्त हो गया। यही तथ्य घ्राणेन्द्रियके विषय-सुख गंध, स्पर्शेन्द्रियके विषय-सुख कोमलता, मृदुता, शीतलता, उष्णता आदि पर घटित होता है, अर्थात् विषय-सुख प्रतिक्षण क्षीण होता जाता है।

शक्ति-क्षीणता— इंद्रिय-सुखमें इंद्रिय और मन-वचन-कायाकी प्रवृत्ति कार्य करती है। यह नियम है कि प्रत्येक प्रवृत्तिमें शक्तिका उपयोग होता है, इससे शक्ति क्षीण होती है। यही कारण है कि विषय सुखको भोगते-भोगते इंद्रिय, मन आदि भी थक जाते हैं।

अभाव— ऐसा कभी नहीं होता कि किसीकी सभी कामनाएं पूरी हो जायं। जो कामना पूरी नहीं होती, उससे संबंधित वस्तुके

अभाव का दुःख सदा बना ही रहता है अर्थात् कामनाके अपूर्ति-जनित अभाव का दुःख संसार अवस्थामें सदा रहता ही है।

जड़ता (मूर्च्छा)— कोई भी कामना मोह-मूर्च्छा-ग्रस्त हुए बिना उत्पन्न नहीं हो सकती। उस मोह या मूर्च्छासे व्यक्ति अपना भान भूल जाता है। अपने चिन्मय-स्वरूपकी विस्मृति हो जाती है। कामनाकी जितनी तीव्रता होती है, उतनी ही गहरी विस्मृति होती है। अपना भान भूलना या स्वरूप-विस्मृति, मूर्च्छाभाव या जड़ताका ही द्योतक है। यह जड़ता ही विषय-भोगमें सुखानुभूति कराती है। जैसे शराबीको शराबसे बेहोशीकी अवस्थामें सुखानुभूति होती है।

आकुलता— कोई भी व्यक्ति, जब तक उसकी कोई इंद्रिय विषय-प्रवण नहीं होती, तबतक वह इंद्रियका सुख नहीं भोग सकता। इंद्रिय की विषयोन्मुखता शक्तिको भंग कर चित्त को अशांत एवं व्याकुल बनाती है। परन्तु जड़ता या मोह-मूर्च्छाके कारण प्राणी उस आकुलता-व्याकुलता का अनुभव नहीं करके, सुखका अनुभव करता है।

पराधीनता— 'क' को कार मिली, उससे वह उसमें बैठनेका आदी (व्यसनी) हो गया। अब उसे साइकिलपर बैठकर या पैदल जानेको कहा जाय तो उसे बड़ा अटपटा लगेगा, दुख होगा। अब वह जानेके लिए कारके अधीन हो गया। कार इधर-उधर गयी तो उसका घरके बाहर जाना कठिन हो गया। इस प्रकार प्रत्येक इंद्रिय-जन्य सुख वस्तुके अधीन अर्थात् पराधीन बनाता है।

नश्वरता— जिन पदार्थों से विषय-सुख मिलता है, वे सभी नश्वर हैं। जब पदार्थ ही नाशवान हैं तो यह भी स्वाभाविक ही है कि उससे मिलनेवाला सुख भी क्षणिक ही होगा।

नीरसता— हम ऊपर कारके द्वारा क्षणिक सुखके उदाहरणमें तथा भोजन, संगीत, दृश्य व ताजमहल आदिके उदाहरणोंमें देख चुके हैं कि इंद्रियजनित सुख प्रतिक्षण क्षीण होता जाता है और उस सुखका अन्त नीरसतामें होता है। मन उससे ऊब जाता है। इसी प्रकार इंद्रियजनित सभी सुख मनको उबानेवाले हैं। यहांतक कि नव-दम्पति, जिनका आज ही विवाह हुआ है और वे वर-वधू परस्पर अत्यंत स्नेह रखते हैं, उनका भी परस्पर मिलन आदिसे मिलनेवाला सुख कुछ ही घंटों में सूख जाता है।

अनृप्ति— कामनापूर्ति या विषय-सुखको जितना भोगा जाता है, व्यक्ति उसका उतना ही आदी हो जाता है। और फिर सुख पाने के लिए नयी कामनाकी उत्पत्ति होती है। परन्तु भोगसे तृप्ति हो जाय और फिर नयी कामनाकी उत्पत्ति न हो, ऐसा संभव नहीं है।

रोगोत्पत्ति— विषय-सुखमें आसक्त व्यक्ति अपनी इंद्रियोंके साथ अतिरेक करता है, जैसे स्वादके सुखमें आसक्त व्यक्ति भूखसे अधिक खाता है, पेट ठूस-ठूसकर भरता है, वह न खाने योग्य वस्तु खाता है। सिनेमा देखनेके सुखमें आसक्त व्यक्ति अपनी नींद और आंखें खराब होनेकी परवा नहीं करता है। इस प्रकार इंद्रियसुखमें आसक्त व्यक्ति अकरणिय-शास्त्रनिन्द्य कार्य करता है। प्रकृति इसे सहन नहीं कर सकती और प्राकृतिक नियमानुसार रोगोत्पत्तिके रूपमें उसे दण्ड मिलता है; अर्थात् दण्ड के रूप में रोगोत्पत्तिका दुःख मिलता है।

वियोगका दुःख— प्राकृतिक नियमानुसार जिसका संयोग होता है, उसका वियोग अवश्यम्भावी है। कारण, वस्तु परिवर्तनशील है,

अतः या तो वह वस्तु नष्ट हो जायेगी अथवा उसके स्वामी, साथी या भोक्ताको मृत्युके कारण अथवा अन्य किसी कारणसे उसे अलग होना पड़ेगा ।

यह नियम है कि प्राणी जिस वस्तु के संयोगमें जितना आधिक सुख मानता है उसे उसके वियोग में उतना ही आधिक दुःख होता है । इस प्रकार संयोग-जनित विषय-सुखका अंत वियोगजनित दुःख में ही होनेवाला है ।

सारांश यह है कि दुनियाका कोई भी दुःख ऐसा नहीं, जिसकी जड़ विषय-सुख न हो । यह प्राकृतिक नियम है कि सुखके भोगी को दुःख भोगना ही पड़ता है ।

वस्तुतः तथ्य तो यह है कि विषय-सुख कामना-उत्पत्ति-पूर्ति तथा फल - ये सब दुःखमय और दुःखजनक हैं ।

इसी सुखके कारण राग-द्वेष-मोह उत्पन्न होते हैं, जिनसे जन्म मरणरूप भव-चक्र चलता है और जिसके फलस्वरूप प्राणी अनन्तकालसे दुःखी हो रहा है ।

विपश्यना साधना इसी दुःख से विमुक्त होने की साधना है । इसके अभ्यास से साधक की मोह-मूर्छा शनैः शनैः दृष्टी है, जड़ता दूर होती है और आंतरिक चैतन्य जाग्रत होता है । भीतर की सच्चाई को देखने का अभ्यासी साधक, कामना और कामना से उत्पन्न दुःख का दर्शन करता है, कामना का त्याग और कामना के त्याग से उत्पन्न दुःख-विमुक्ति का दर्शन करता है और परिणामतः दुःखविमुक्त होता है ।

(“ कल्याण ” भाग ५१ संख्या ६ से साभार ।)

आगामी शिविर (इगतपुरी में)

क्रमांक १५३ दि. १८-१०-७८ से २९-१०-७८ तक (अंग्रेजी)

,, १५४ दि. १८-११-७८ से २९-११-७८ तक (हिन्दी)

संपर्क : व्यवस्थापक, विपश्यना विश्व विद्यापीठ, घम्मगिरि,
इगतपुरी-४२२४०३. (नासिक-महाराष्ट्र) फोन नं. ७६.

एक शुभेच्छुक
की मंगल कामनाओं सहित ।

मे. बस्तीराम नारायणदास सारडा
बम्बई - नासिक.
की मंगल कामनाओं सहित ।

दोहे धरम के

मनवांछित पाए मगर, मिटे न मन की चाह ।
मनुआ ! तेरी चाह का, किसने पाया थाह ?
रैन दिवस तड़पत रहा, चाह-चाह में लीन ।
मिला न सुख संतोष का, हुआ न दुःख-विहीन ॥
कायम रखता कामना, मन का मूढ़ स्वभाव ।
रहे हरे सूखे नहीं, यह तृष्णा के घाव ॥
पल पल जागे कामना, पल पल मन बेचैन ।
देख कामना त्याग कर, सच्चे सुख की चैन ॥
मनुआ व्याकुल ही रहा, हुई न पूरी आश ।
रही तड़पती कामना, रहा उदास निराश ॥
जग में कब किसकी हुई पूर्ण सभी अभिलाष ?
बून्द बून्द पी ओस की, किसकी बुझती प्यास ?

दूहा धरम रा

क्लेस बढ़ावै कामना, दुःख बढ़ावै द्वेस ।
जो सुख चावै मानखा, काम-द्वेस कर सेस ॥
जितनी जितनी कामना, उतनी उतनी क्लेस ॥
जितनी गाढी कामना, उतनी गाढी क्लेस ॥
मनसा पूरण करण महुँ, सुख मौन मतिमन्द ।
साचै सुख कै स्वाद को, नाँय चख्यो मकरन्द ॥
एक बुझै दूजी जळै, जळणो बन्द न होय ।
विस्ना तेरी आग झूँ, हिवडो व्याकल होय ॥
एक मिटै दूजी उठै, समदर लहर समान ।
विस्ना रो तांतो लग्यो, पल पल पीड़ित प्रान ॥
ई कामना कतार को, दीसै नाँय नमेड़ ।
आंख मूंद आती र'वै, भेड़ां लारै भेड़ ॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए संपादक, मुद्रक एवं प्रकाशक : रामप्रताप यादव, ग्रीन हाऊस, २ री मंजिल, ग्रीन स्ट्रीट, फोर्ट,
बम्बई २३. टेलीफोन : २६८६७९. • मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपुर, नासिक ४२२ ००७. टेलीफोन ८२५१ •
पत्रिका में विज्ञापन दर : आधा पृष्ठ रू. ४००/-, चौथाई पृष्ठ रू. २००/- • वार्षिक शुल्क रू. ५/-, आजीवन शुल्क रू. ५१/-

“विपश्यना”

पो. रजि. नं. NSK/64

प्रेषक :

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
घम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३.
(नासिक - महाराष्ट्र)